# देश के न्यायतंत्र से जुड़ी प्रमुख चिंताएँ

drishtiias.com/hindi/current-affairs-news-analysis-editorials/news-editorials/15-02-2019/print

एक साल से कुछ अधिक समय हुआ जब भारत के सुप्रीम कोर्ट के चार वरिष्ठ न्यायाधीशों ने यह बताने के लिये एक अभूतपूर्व प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई कि देश के सर्वोच्च न्यायिक प्रणाली के साथ सब कुछ ठीक नहीं चल रहा था। उनकी प्रेस कॉन्फ्रेंस ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता, पारदर्शिता और जवाबदेही से जुड़े कुछ परेशान करने वाले सवाल खड़े कर दिये। विगत एक वर्ष में भारतीय न्याय व्यवस्था में काफी हलचलें देखने को मिलीं, लेकिन कुछ चिंताएं ऐसी हैं जो अब भी सवाल खड़े करती हैं।

लेकिन पहले एक नज़र डाल लेते हैं उस प्रेस कॉन्फ्रेंस पर जिसके पक्ष और विपक्ष में देश का न्याय तंत्र बंट सा गया था...

पिछले वर्ष देश में पहली बार शीर्ष न्यायपालिका में तब असाधारण स्थिति देखी गई, जब सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन चार वरिष्ठ जजों ने मीडिया को संबोधित किया था। तब चीफ जस्टिस के बाद दूसरे सबसे सीनियर जज जस्टिस जे. चेलमेश्वर ने कहा था कि कभी-कभी होता है कि देश के सुप्रीम कोर्ट की व्यवस्था भी बदलती है...सुप्रीम कोर्ट का प्रशासन ठीक तरीके से काम नहीं कर रहा है...अगर ऐसा ही चलता रहा तो लोकतांत्रिक परिस्थिति ठीक नहीं रहेगी... हमने देश के सामने ये बातें नहीं रखीं और हम नहीं बोले तो लोकतंत्र खत्म हो जाएगा...हमने इस मुद्दे पर चीफ जस्टिस से बात की, लेकिन उन्होंने हमारी बात नहीं सुनी। इस प्रेस कॉन्फ्रेंस में शामिल तीन वरिष्ठ न्यायाधीश जस्टिस जे. चेलमेश्वर, कुरियन जोसफ और मदन बी. लोकुर अब रिटायर हो चुके हैं और तत्कालीन चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा भी। लेकिन कुछ यक्ष प्रश्न अभी भी खड़े हुए हैं।

### 5 प्रमुख चिंताएँ

### 1. बतौर 'मास्टर ऑफ द रोस्टर' चीफ जस्टिस

- इस विशेषाधिकार को तब स्पष्ट किया गया था, जब जुलाई 2018 में तत्कालीन चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली संविधान पीठ ने यह व्यवस्था दी थी कि चीफ जस्टिस ही **मास्टर ऑफ द रोस्टर** हैं। न्यायालय की बेंचों का गठन करने और गठित बेंचों को मामले आवंटित करने का विशेषाधिकार केवल चीफ जस्टिस के पास है।
- ऐसे उदाहरण भी सामने आए जहाँ देश और सर्वोच्च न्यायालय पर दूरगामी परिणाम डालने वाले मामले इस अदालत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा अपनी पसंदीदा कुछ चुनिंदा बेंचों को सौंपे गए थे और इसके पीछे कोई तर्कसंगत आधार भी नहीं था।

### 2. उच्च न्यायपालिका में नियुक्तियाँ और स्थानांतरण किस प्रकार होते रहेंगे

- जब भी जजों के नए समूह के चयन की घोषणा होती है, परेशानियों का भी एक नया समूह उठ खड़ा होता है। यह लगभग वैसा ही है जैसा कि सुप्रीम कोर्ट कॉलेजियम द्वारा नियुक्तियों की प्रक्रिया को कई तरह से अपारदर्शी बनाने के रास्ते दिखा रहा है। हालिया समय में ऐसे दो मामले सामने आए जो वास्तव में हैरान-परेशान करने वाले थे।

- पहला मामला दिल्ली हाई कोर्ट के सिटिंग जज के स्थानान्तरण का है, जिसके फैसलों पर उन लोगों ने आपत्ति जताई जो वर्तमान केंद्र सरकार में हैं या उनके करीबी माने जाते हैं। हालाँकि उनके स्थानांतरण को अंतत: मंज़ूरी नहीं मिली, लेकिन इस प्रकार की भविष्यवाणी करना उस न्यायपालिका के लिये ठीक नहीं है, जो राज्य के किसी भी प्रकार के प्रभाव से खुद को मुक्त बताने में गर्व करती है।
- दूसरा मामला हाई कोर्ट के दो चीफ जस्टिसों से जुड़ा है, जिनके नाम का प्रस्ताव सुप्रीम कोर्ट के कॉलेजियम ने किया था, लेकिन बाद में उसे वापस ले लिया, जबकि ये दोनों ही चीफ जस्टिस बेहतरीन जजों में शुमार किये जाते हैं और सुप्रीम कोर्ट में जाने के पात्र थे। इसके पीछे कारण यह दिया गया कि इन न्यायाधीशों के खिलाफ 'कुछ प्रतिकूल सामग्री' सामने आई थी। यदि ऐसा था भी तो बेहतर तरीका तो यह होता कि इस प्रतिकूल सामग्री को इन जजों के सामने रखा जाता और उन्हें अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाता।
- इन दो चीफ जस्टिस के अलावा हाई कोर्ट के दो और सीनियर जजों की अनदेखी कर अपेक्षाकृत जूनियर जजों को **सर्वोच्च न्यायालय** में नियुक्त कर दिया गया। दुर्भाग्य से चयन प्रक्रिया के अंत में सामने आने वाली ऐसी 'प्रतिकूल सामग्री' के आधार पर चयन में बदलाव करने से न्यायतंत्र का भरोसा कमज़ोर होता है। इसके साथ सरकार की चुप्पी भी कम परेशान करने वाली नहीं है, क्योंकि इससे पहले ऐसी ही परिस्थितियों में सरकार ने न्यायिक नियुक्तियों में वरिष्ठता क्रम का बचाव किया था।

**3. कुछ मामलों में जानकारी प्राप्त करने के लिये 'सीलबंद लिफाफे' के प्रति सुप्रीम कोर्ट का हालिया आकर्षण भी चर्चा का विषय बना हुआ है। पिछले कुछ महीनों में तीन अत्यधिक-प्रलेखित मुकदमों (Highly-documented Litigations) में इसका इस्तेमाल किया गया।**

- यह खुले, पारदर्शी न्याय के विचार के पूरी तरह से खिलाफ है। दुर्भाग्यवश हमारी न्यायपालिका न केवल अपने कामकाज में अपारदर्शी है, बल्कि इसके सार्वजनिक कामकाज (सार्वजनिक विवादों के मध्यस्थ के रूप में) में भी अपारदर्शिता झलकती है।
- न्यायशास्त्र में यह स्पष्ट कहा गया है कि इस तरह की गुप्त सूचनाओं का सहारा केवल असाधारण मामलों में ही लिया जाना चाहिये। लेकिन यहाँ इन्हें बिना किसी स्पष्ट या तर्कसंगत कारण के बेहद सतही तरीके से मांगा जा रहा है। उदहारण के लिये नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटिजंस मामले को देखें... लाखों लोगों की ज़िंदगी सील्ड कवर में बंद है। निश्चित रूप से हम अपनी ज़िंदगी का निर्णय गोपनीयता के तहत नहीं होने दे सकते।

**4. चौथा मुद्दा सेवानिवृत्ति के बाद की नियुक्तियों से संबंधित है**

- सेवानिवृत्ति से पहले के किसी भी निर्णय से सेवानिवृत्ति के बाद के काम (Assignments) प्रभावित हो सकते हैं। ऐसे में यह स्पष्ट है कि ऐसी नियुक्तियाँ वास्तव में न्यायपालिका की स्वतंत्रता से समझौता करती हैं।
- वास्तव में चाहे इससे हितों का टकराव न भी होता हो, लेकिन ऐसी संभावनाएँ बराबर बनी रहती हैं और इन्हें रोका भी नहीं जा सकता।

**5. पाँचवां मामला कुछ अजीबो-गरीब किस्म का है। इसमें सूचना का अधिकार कानून, 2005 पर दिल्ली हाई कोर्ट के एक निर्णय को सुप्रीम कोर्ट ने खुद सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी थी।**

- दिल्ली हाई कोर्ट ने अपने फैसले में सुप्रीम कोर्ट को भी पारदर्शिता का सुझाव दिया था, जबकि सुप्रीम कोर्ट ने स्वयं को इस कानून के दायरे से बाहर रखने का मामला अपनी ही अदालत में चला रखा है।
- दिल्ली हाई कोर्ट के फैसले पर रोक लगा दी गई और पिछले एक दशक से यह मामला अदालत में लटका हुआ है।
- विशेषकर न्यायपालिका में पारदर्शिता के मुद्दों के संदर्भ में इस मामले का निपटारा करना बेहद ज़रूरी है।

**आगे की राह**

- विश्व के सभी लोकतांत्रिक देशों, विशेषकर UK, कनाडा और ऑस्ट्रेलिया में न्यायपालिका में कार्य आवंटन और बेंचों का गठन विचार-विमर्श के बाद होता है और स्वाभाविक रूप से इसमें विश्वास की भावना भी शामिल होती है।
- वैकल्पिक रूप से इस संबंध में स्पष्ट और परिभाषित नियम हैं। उदाहरण के लिये यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय और यूरोपीय न्यायालय (European Court of Human Rights & the European Court of Justice) में चीफ जस्टिस को असीमित शक्तियाँ नहीं दी गई हैं।
- यहाँ तक कि भारत के हाई कोर्टों में भी, जहाँ चीफ जस्टिस की प्रशासनिक बैठकों की अध्यक्षता करने जैसी आधिकारिक भूमिका हो सकती है, वहाँ भी किसी बिंदु पर यह नहीं माना गया है कि मुख्य न्यायाधीश अदालत में अन्य न्यायाधीशों से वरिष्ठ हैं। इस सिद्धांत की पवित्रता को समाप्त नहीं किया जा सकता।
- दक्षिण कोरियाई सुप्रीम कोर्ट के एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश को हाल ही में तब गिरफ्तार किया गया था जब उन्होंने अपने कार्यकाल के दौरान कथित रूप से अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया था। उन पर कंजर्वेटिव सरकार के पक्ष में युद्ध से संबंधित मुआवज़े के मामलों की जाँच-पड़ताल में देरी करने का आरोप लगाया गया था।
- संस्थागत रूप में न्यायपालिका पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आदर्श रूप में किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में न्यायपालिका को चलाने के लिये श्रेष्ठ व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अतः न्यायाधीशों के चयन के लिये एक महत्त्वपूर्ण मानदंड 'योग्यता' होना चाहिये। लेकिन वर्तमान में यह देखने में आ रहा है कि कई योग्य और बेहतर जजों की अनदेखी हो रही है। योग्यता के अलावा अन्य आधारों पर न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ स्व-स्थायी (Self-perpetuating हो सकती हैं।
- इस तरह की नियुक्तियों वाले कई जज आगे चलकर कॉलेजियम के सदस्य बन जाएंगे और वे उसी तरह के विकल्प चुन सकते हैं जो उनके वरिष्ठों ने बनाए थे। कुछ व्यक्तियों को नियुक्त करने के लिये अल्पकालिक निर्णय न्यायपालिका की दीर्घकालिक स्थिति को प्रभावित करते हैं।
- आदर्श रूप से सेवानिवृत्ति के बाद नई नियुक्तियाँ करने से पहले कूलिंग-ऑफ अवधि शुरू करने का नीतिगत निर्णय होना चाहिये। या ऐसी नियुक्तियाँ किसी तटस्थ संस्था द्वारा की जानी चाहिये जो कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त हो।
- किसी भी मामले में कम-से-कम नियुक्तियों के संबंध में ऐसे प्रस्ताव नहीं दिये जाने चाहिये और न ही उन पर विचार किया जाना चाहिये जब कोई न्यायाधीश पद पर बना हुआ हो।

**बेहद ज़रूरी है संतुलन बनाए रखना**

देखा यह गया है कि जब कार्यपालिका अपने दायित्व निर्वहन में विफल रहती है, तब ही न्यायपालिका उसके कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप करती है। 1972 में **केशवानंद भारती** मामले में सुप्रीम कोर्ट की 13 जजों की अब तक की सबसे बड़ी संविधान पीठ ने अपने फैसले में स्पष्ट कर दिया था कि भारत में संसद नहीं बल्कि संविधान सर्वोच्च है। इस सिद्धांत के तहत संविधान में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र की लक्ष्मण रेखा स्पष्ट खींच दी गई है। कानून बनाना विधायिका का काम है, इसे लागू करना कार्यपालिका का और विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों के संविधान सम्मत होने न होने की जाँच करना न्यायपालिका का काम है। इन तीनों के बीच संतुलन बनाए रखने के लिये यह ज़रूरी है कि न्यायपालिका, संसद और कार्यपालिका के बीच एक-दूसरे के लिये आपसी सम्मान होना चाहिये और इन सभी पर किसी प्रकार का कोई 'बाहरी दबाव' नहीं होना चाहिये।

**स्रोत:** 12 फरवरी को Indian Express में प्रकाशित लेख All is Still Not Well in Court पर आधारित